सती मृगावती

भँवरलाल नाहटा।

अभय ग्रन्थमाला पुष्प नं० ३

श्री जिन कृपाचन्द्रसूरिभ्योनमः ।

* सती मृगावती *

लेखक—

भँवरलाल नाहटा

प्रकाशक—

शंकरदान भैरूंदान नाहटा

नाहटों की गवाड़, बीकानेर ।

पहला संस्करण	ज्येष्ठ सुदी १०	मूल्य =) दो
१०००	श्री वीर संवत् २४५६	आना

समर्पण

अपनी परम पूजनीया, वात्सल्यमयी

गांभीर्यादि गुण समन्विता,

स्वर्गीया माताजी

की

पवित्र स्मृति में

सादर सानुनय

समर्पित —

—भँवर
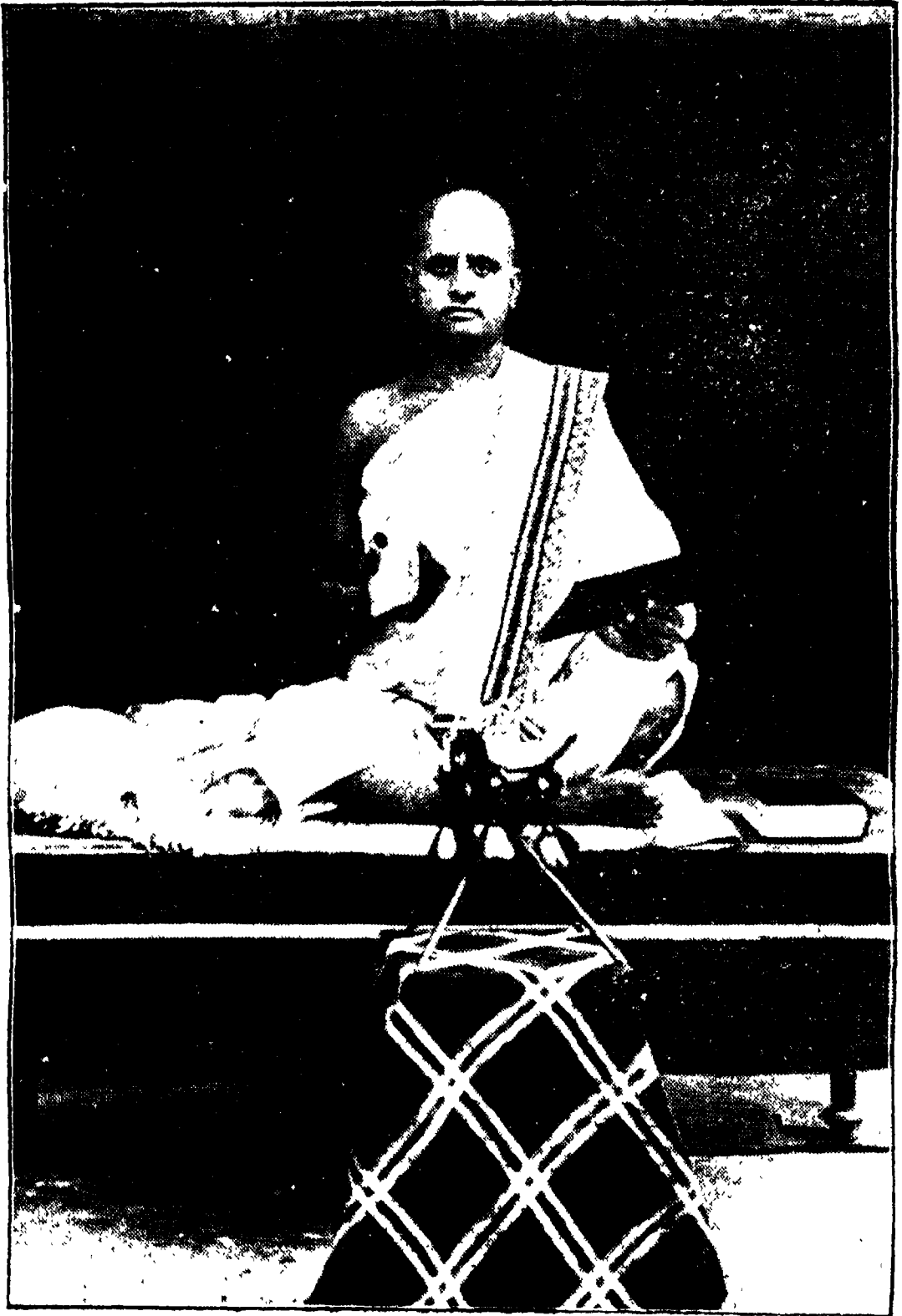
श्रीमद् जैनाचार्य श्री १००८ श्री जिनकृपाचंद्र सूरीश्वरजी महाराज के शिष्य

प्रवर्त्तक मुनि श्री सुखसागर जी महाराज ।

जन्म संवत् १९४३, **दीक्षा संवत् १९६१,**

❋ दो शब्द ❋
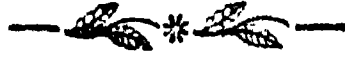
मैं लेखक नहीं हूँ। अपनी परम प्रिय स्वर्गीय जननी के अतुल वात्सल्य प्रेम की स्मृति ही इस छोटी सी पुस्तक के लिखे जाने की कारण भूत हुई है। उसकी कार्य कौशलता, सहनशीलता, दयालुता, पातिव्रत आदि गुणों को याद कर हृदय सागर में अनेक तरंगें उठा करती हैं जिसमें से एक ऐतिहासिक सती के चरित्र चित्रण के रूप में प्रकट हुई एक तरंग को जनता के समक्ष उपस्थित करता हूँ। मेरा यह पहला ही प्रयास है, इसके अनेक दोषों की तरफ ध्यान न देकर यदि पाठकगण इसको अपना कर उत्साहित करेंगे तो सम्भव है कि सुअवसर पाकर अन्य तरंगें भी कभी किसी पुस्तक का रूप धारण करें। इस पुस्तक के संशोधनादि कार्यों में श्रीयुत राव गोपालसिंह जी वैद से पूर्ण सहायता मिली है एतदर्थ उन्हें हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

निवेदक—

लेखक।

सती मृगावती ।

प्रथम परिच्छेद

भारण्ड पक्षी द्वारा हरण ।

स भरतक्षेत्र में वत्स नामक देश में अलकापुरी की उपमा को धारण करने वाली अत्यन्त रमणीय, सरोवर, वापी, वाटिकाएं और गगनचुंबी अट्टालिकाओं से सुशोभित, धन धान्य से परिपूर्ण, कौशाम्बी नामक नगरी थी । उस नगरी में महान् तेजस्वी, शत्रुओं द्वारा विजय को पाया हुआ, राजा शतानीक राज्य करता था । उसके शीलादि गुणों से विभूषित वैशालीपति चेटक महाराज की पुत्री सती मृगावती अग्र-महिषी थी । जिसने अपने असाधारण गुणों द्वारा महाराज को मुग्ध कर लिया था । सांसारिक सुखों का उपभोग करते हुए क्रम से रानी को गर्भ रहा । तृतीय मास में गर्भ के प्रभाव से रानी को

दोहद उत्पन्न हुआ कि मैं रुधिर से भरी हुई वापी (बावड़ी) में स्नान करूँ; किन्तु यह पाप कार्य समझ कर किसी के सामने प्रकट नहीं किया।

अब मृगावती दिन पर दिन थकने लगी, क्योंकि उसका दोहद पूर्ण नहीं हुआ था। रानी को शरीर से क्षीण होते हुए देख कर राजा ने मधुर स्वर से पूछा, "प्रिये! तुम्हारे शरीर में ऐसी कौनसी व्याधि उत्पन्न हुई है? जिससे शरीर दुर्बल होता जाता है।" इस प्रकार पति के विशेष आग्रह से मृगावती ने दोहद की बात उन्हें कही। तब राजा ने कहा कि तुम किसी तरह की चिन्ता मत करो। मैं शीघ्र ही तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा। ऐसा कह कर राजा ने युगंधर नामक प्रधान मन्त्री को बुला कर मृगावती के दोहद पूर्त्ति करने के लिये कहा। तब मन्त्री ने लाल रंग के पानी से वापी भरवा कर उसमें रानी के स्नान करने का प्रबन्ध कर दिया।

रानी मृगावती भी हर्षित होकर सपरिवार अनेकों सुभट्ट और दास दासियों के साथ वापी के पास गई और प्रफुल्लित चित्त से उस वापी में प्रवेश करके स्नान करने लगी।

वह ज्योंही स्नान करके वापी से बाहिर निकली त्योंही आकाश में उड़ता हुआ एक भारण्ड पक्षी रक्त वर्ण मृगावती को मांस का पिण्ड समझ कर ले उड़ा। महारानी को लेकर उड़ते हुए देखकर सब लोग हाहाकार करने लगे और मृगावती भी रो रो कर कहने लगी बचाओ! कोई मुझे बचाओ! नहीं यह पक्षी मुझे मार डालेगा।

लेकिन क्या करें, सब विवश थे, उस आकाश गामी पक्षी का पीछा करने को कौन समर्थ था। बस भारण्ड पक्षी सबके देखते २ इतना दूर चला गया कि उन लोगों की दृष्टि से अदृश्य हो गया।

"हा देवी तू कहाँ चली गई, जो कि राज प्रासादों में सुख से काल व्यतीत करती थी; सूर्य के उदय और अस्त होने तक का भी जिसको पता न था, सैकड़ों दास दासियाँ जिसके आगे हाथ बांधे खड़ी रहती थीं; आज वही मेरी अर्द्धाङ्गिनी मृगावती एक क्षुद्र पक्षी का ग्रास हो गई।" इस प्रकार राजा को विलाप करते हुए देखकर मन्त्री ने कहा, "हे राजन् विलाप करने से क्या हाथ आयगा? वृथा क्यों काल विलम्ब करते हैं; शीघ्र ही कोई ऐसा उपाय सोचिये जिससे पुनः आपको महारानी जी प्राप्त हों।" ऐसा सुन कर राजा ने सब स्थान में, प्रति ग्राम, जंगल और पर्वतों पर रानी की खोज करवाई लेकिन मृगावती का तो कोई पता ही न चला।

समय व्यतीत होते देर नहीं लगती, इस प्रकार चौदह वर्ष बीत गये तो भी शतानीक तो रानी को न भूला था, दिन रात उसके हृदय में मृगावती का वियोग खटकता था।

एक दिन राजा, मन्त्री सामन्तों सहित सभा में बैठा था। तब साथ में किसी पुरुष को लिये हुए एक महाजन ने सभा में प्रवेश किया, और आते ही राजा को नमस्कार करके एक सोने का रत्न मय कंकण राजा को देकर साथ वाले पुरुष की ओर संकेत करके कहा, "महाराज—यह भील इस कंकण को बेच रहा था; मैं इस

पर आपका नाम अंकित देख कर ले आया हूँ।" राजा ने उस कंकण को पहिचान लिया और हर्षित होकर हृदय से लगा लिया। किन्तु पीछे राजा ने सोचा कि यह मृगावती का कंकण इसे क्यों कर मिला, हाय ! वह तो अवश्य मर गई है, अन्यथा इसे उसका कर कंकण प्राप्त होना असम्भव था।

इस प्रकार चिन्ता में ग्रस्थ राजा ने उस पुरुष से पूछा कि तुम कौन हो ? और यह कंकण तुम्हें कहाँ मिला। तब उस पुरुष ने हाथ जोड़ कर कहा, "महाराज ! मैं मलयाचल के वन में रहने वाला भीम नामक भील हूँ। हाथियों के कुम्भस्थल में रहे हुए मोतियों का संग्रह करके हार बना कर अपने प्राणों से भी अधिक प्यारी भीलनी को पहिना कर प्रफुल्लित होता हूँ। मीठे २ रस वाले फलों का भोजन करके जीवन व्यतीत करता हूँ। मैं एक दिन हाथ में खड्ग लिये हुए वन में फिर रहा था, तब चन्दन के वृक्ष पर लिपटे हुए एक काले साँप को देखा, जो कि अपने मस्तक पर मणि को धारण किये हुए था, मैंने सोचा कि इस मणि को अपनी स्त्री के हार के बीच में लगाऊँ तो बहुत अच्छा हो। ऐसा विचार कर मैंने ज्यों ही उस साँप को मारने के लिये खड्ग उठाई त्यों ही किधर ही से आवाज़ आई, मत मारो ! मत मारो ! प्राणियों की हिंसा करने वाले को इस भव में दुःख और पर भव में दुर्गति का भाजन होना पड़ता है। और उसी प्रकार एक जीव को अभयदान देने वाले को पर्वत के बराबर स्वर्णदान दान के फल से भी अधिक फल होता है।

कहा भी है कि—

"यो दद्यात्कांचनं मेरुं, कृत्स्नां चैव वसुंधरां।
एकस्य जीवितं दद्यात् नच तुल्यं युधिष्टरः॥ १॥

अर्थात्—हे युधिष्टर! सोनेका सुमेरु पर्वत दान दिया जाय, और इस सारी पृथ्वी को भी दान में देदी जाय, तो भी एक जीव को अभय दान देने के बराबर नहीं हैं।

ऐसा सुनते ही मैंने तलवार को तो रखली और इधर उधर देखने लगा। इतने ही में बत्तीस लक्षणवान्, अत्यंत सुन्दर बालक ने आकर मुझ से कहा कि तू इसे क्यों मारता है? तब मैं ने उसे कहा कि इस सांप के मस्तक में रही हुई मणि की मुझे आवश्यक्ता है क्यों कि मोतियों के हार के बीच में लगाने की मणि के लिये मेरी स्त्री प्रतिदिन मुझे दिक् करती है। तब उस बालक ने दौड़ कर अपनी माता के पास जाकर कहा कि आज मैं एक सांप को अभयदान दूंगा। इस लिये तुम्हारे हाथ का कंकण मुझे दो। पुत्र स्नेह के कारण उसकी माता ने उसे अपना कंकण दे दिया। उसने वह कंकण लाकर मुझे देते हुए कहा—अब इस सांप को न मारना। मैं ने भी सोचा कि इस अमूल्य कंकण के सामने नागमणि क्या चीज़ है इसे व्यर्थ क्यों मारूं? ऐसा विचार कर मैं कंकण को लेकर अपने घर आया और वह आभरण स्त्री को देदिया। इस कंकण को देख कर वह बहुत प्रसन्न हुई और पहन लिया।

इस प्रकार मेरे यहां यह कंकण पांच वर्ष तक रहा। पीछे मेरी स्त्री ने वह कंकण मुझे देकर कहा कि तुम कौशाम्बी जाओ और इस कंकण को बेच कर मेरे कानों में पहिनने के लिये दो कुण्डल लाओ। तब मैं इस कंकण को बेचने के लिये नगरी में आया; मुझे बेचते हुए देख कर ये मुझे यहां ले आये हैं।

भील के मुख से इतनी बात सुन कर राजा ने उस को बहुत सा द्रव्य और भीलनी के लिये कानों के कुण्डल देकर सन्तुष्ट किया। और कहा "हे पारिधीराज ! तुमने जहां उस दिव्य कुमार को देखा था वहां, तुम आगे २ चलकर मुझे ले चलो तो मैं तेरा यह उपकार जन्म भर न भूलूंगा और तुम्हें नाना प्रकार के वस्त्राभूषण दूँगा जिससे तुम अपनी स्त्री के साथ सुख से जीवन बिताना। ऐसा सुन कर वह भील तो आगे हो गया और पीछे बहुत सी सेना के साथ महाराज शतानीक मलया चल जाने के के लिये रवाना हुए। मार्ग में तिलक किया हुआ प्रधान पुरुष, कुमारी कन्या, वेद पढता हुआ ब्राह्मण, भेरीनाद, संखनाद, बछड़े सहित गाय, हाथी, सजाया हुआ घोड़ा, मच्छ युगल और निर्धूम अग्नि आदि शुभ शकुन मिले। कहा भी है:—

"कन्या गो पूर्ण कुंभं दधि मधु कुसुमं पावकं दीप्य मानं।
यानंवा गो प्रयुक्तं करिनृपतिरथः शंख वाद्यध्वनिर्वा ॥
उत्क्षिप्ता चैव भूमि जलचर मिथुनं सिद्धमन्नं यतिर्वा।
वेश्या स्त्री मद्य मांसं जनयति सततं मंगलं प्रस्थितानां ॥१॥

अर्थात्—कन्या, गाय, जल से भरा हुआ घड़ा, दही, शहद, फूल, जलती हुई अग्नि, बैलों से जोती हुई गाड़ी, हाथी, राजाका रथ, संख की ध्वनि, बाजिंत्रों की ध्वनि, हल चलने वाली भूमि जलचर जन्तुओं का जोड़ा, तैयार भोजन, मुनि, वेश्या, सधवास्त्री, मदिरा, मांस, इतनी उपरोक्त चीजें प्रयाण करते वक्त सामने मिलें तो शुभ सूचक शकुन है।

इस प्रकार शुभ शकुनों से सूचित होकर मार्ग उल्लंघन करते हुए महाराज शतानीक उस भील के साथ मलयाचल के बन में आ पहुँचे। वहाँ बहुत से चन्दन के वृक्ष थे उन वृक्षों पर, जिस प्रकार योगीश्वर ध्यान में बैठे हों, उसी तरह साँप लिपटे हुवे थे। *मयूर एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर उड़ कर जा रहे थे; वे महाराज शतानीक को देख कर नृत्य करने लगे। एवं पवन के वेग से वृक्ष डोलने लगे, वे भी मानो महाराज को नमस्कार करके स्वागत कर रहे हों; ऐसा प्रतीत होता था। तब उस भील ने कहा—"राजन् यह मलयाचल बन है और यह वही स्थान है जहाँ उस दिव्य बालक ने मुझे कर कंकण लाकर दिया था। अब आप मुझे आज्ञा दीजिये, मैं अपने घर जाना चाहता हूँ; मेरी स्त्री मेरे लिये प्रतीक्षा करती होगी। तब राजा ने कहा कि, मुझे तो रानी से वियोग सहते १४ वर्ष बीत गये। तुम थोड़ी सी देर में ही क्यों शीघ्रता

---

* यद्यपि साँप और मयूर का एक स्थान में रहना असम्भव है तो भी यहाँ तापसाश्रम का प्रभाव समझें।

करते हो ? भील ने कहा राजन् ! यहाँ योगियों के आश्रम हैं, यदि वे मुझ पापी को देख लेंगे तो तत्काल भस्म कर डालेंगे; परमात्मा की कृपा से आपकी अभिलाषा पूरी हो, मैं जाता हूँ। ऐसा कह वह भील तो अपने स्थान चला गया। अब राजा ने एक तापसों के आश्रम में प्रवेश किया जहाँ योगियों के तपोबल से सिंह और हरिण एक साथ खेलते थे। उक्तंच—

"सारंगी सिंह शावं स्पृशति सुत धिया नंदिनी व्याघ्र पोतं ।
मार्जारी हंस बालं प्रणय पर वशा केकि कान्ता भुजंगं ॥
वैराण्या जन्म जाता न्यपि गलित मदा जंतवोऽन्ये त्यजंति ।
त्यक्त्वा साम्यैक रूढं प्रशमित कलुषं योगिनं क्षीण मोहं" ॥१

अर्थात्—जिन शान्त स्वभावी क्षीण मोहनीय कर्म वाले योगियों का आश्रय लेकर हरिणी अपने पुत्र की बुद्धि से सिंह के बच्चे से प्यार करती है। और गाय व्याघ्र के बच्चे से प्यार करती है। प्रेमवती मयूरी साँप से प्रेम करती है। आजन्म से वैर वाले प्राणी भी द्वेष को त्याग कर परस्पर प्रेम करते हैं।

उस आश्रम में आम्र, केला, जंभीरी, नारियल, सुपारी, इलायची, लौंग आदि नाना प्रकार के वृक्ष थे। पुष्प वाटिका और चन्दन वृक्षों की सुगन्ध से वह आश्रम देवों के नन्दन बन को भी जीतने वाला था। वहाँ फल फूल आदि का भोजन कर के अपना निर्वाह करने वाले तापसों को देखा, वे एक सुन्दर बालक को राजी कर रहे थे जो कि किसी कारणवश नाराज हो गया था।

वहाँ जाकर राजा ने उन्हें नमस्कार कर के पूछा—"यह बालक कौन है ? इसके माता पिता का क्या नाम है ?" तब एक तपस्वी ने उत्तर दिया राजन् ! यह आश्रम धर्म ध्यान तपश्चर्या करने का स्थान है। यहाँ अनेकों महात्मा रह कर आत्म साधन करते हैं; सब से बड़े योगी का नाम ब्रह्मभूति है। उनका शिष्य विश्वभूति एक दिन गुरु की आज्ञा लेकर ईंधन लेने के लिये मलयाचल गया।

उसने वहाँ जाकर एक अत्यन्त सुन्दर स्त्री को मूर्छागत पड़ी देखी। उसे देख कर तपस्वी को करुणा आगई, और शीतलोपचार करके उस सुन्दरी को सचेत किया। वह उठते ही विलाप करने लगी। तब विश्वभूति ने कहा बहिन ! तुम किसी प्रकार का भय मत करो, मैं तपस्वी तुम्हारा भाई हूँ। हमारे आश्रम में चल कर खुशी से रहो। जैसे सीता को महर्षि के आश्रम में पुत्र जन्म हुआ था, उसी प्रकार तुम्हारी व्यवस्था करेंगे। उसने भाई के यह वचन सुनते ही सोचा, यदि मैं वहाँ जाऊँगी तो मुझे किसी प्रकार का सिंह व्याघ्रादि जंगली पशुओं का भय न रहेगा। मैं वहाँ निर्मल शील का पालन करूँगी जिस से विरह व्यथा दूर हो जायगी, शील के प्रभाव से मुझे अवश्य ही अपना पति मिलेगा। और शील ही के प्रभाव से इस भव और पर भव में अक्षय सुख प्राप्त होगा।

यथा:—

"शीलं नाम नृणां कुलोन्नति करं, शीलं परंभूषणं ।
शीलं ह्यमतिपाती वित्त मनघं, शीलं सुगत्यावहं ॥

शीलं दुर्गति नाशनं सुविपुलं, शीलं यशः पावनं ।
शीलं निर्वृति हत्यनंत सुखदं, शीलं तु कल्पद्रुमः"॥१॥

अर्थात्—ब्रह्मचर्य मनुष्यों के कुल की उन्नति करने वाला है, ब्रह्मचर्य उत्कृष्ट भूषण है, ब्रह्मचर्य अक्षय श्रेष्ठ धन है, ब्रह्मचर्य उत्तम गति में पहुँचाने वाला है, ब्रह्मचर्य दुर्गति का नाश करने वाला है, ब्रह्मचर्य पवित्र प्रख्यात यश है, ब्रह्मचर्य अनन्त सुखमय मोक्ष है और ब्रह्मचर्य ही कल्प वृक्ष है।

सती सीता, द्रौपदी, मदन रेखा, दमयन्ती, पद्मावती और ऋषिदत्ता आदि महासतियों ने शील ही के प्रभाव से सब विघ्नों को दूर किया है। ऐसा विचार कर वह विश्वभूति के साथ आश्रम में आ गई, और तपस्विनियों के साथ रहने लगी। क्रमशः गर्भ के दिन पूरे होने से उसके कामदेव के समान रूप लावण्य वाला पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र जन्म के उपलक्ष में वृक्षों ने पुष्पवृष्टि की। पक्षी मधुर ध्वनि से गाने लगे, सभी तापस और तापसनियों के हर्ष का पारावार न रहा। प्रसूति कार्य हो जाने के पश्चात् तापस लोग विचार करने लगे कि इस बालक का क्या नाम दिया जाय, इतने ही में आकाश से देववाणी हुई—

"क्षोणी रक्षण दक्षण पदनता नेक क्षमा धीश्वरः ।
संगीतादिकलाकलापकुशला तेजस्विनामग्रणी ॥
रुपायास्त मनोभव परिणतः न्यायैक मूर्ति सुधी ।
भावी साहसकाग्रणीरुदयनो, राजाधिराजो ह्ययं" ॥१॥

अर्थात्—पृथ्वी को पालन करने वाले अनेक प्रचण्ड राजाओं का अधीश्वर संगीत आदि कला समूह में कुशल, प्रतापियों में तेजस्वी, रूप में साक्षात् कामदेव, न्याय की मूर्त्ति, साहसियों में महा साहसी यह उदयन राजाधिराज होगा।

इस प्रकार देववाणी के अनुसार तपस्वियों ने उस सुन्दर बालक का नाम उदयन रखा। वह बालक क्रमशः शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भांति बढ़ने लगा। आचार्य श्री ब्रह्मभूति ने उसे सकल कलाओं का अभ्यास कराया। जब वह बालक छोटा था तब तो सब की आज्ञा पालन करता था, लेकिन आज कल क्षत्रियपन का तेज प्रकट होगया है। सिंह आदि पशुओं को बांध देता है एवं उन्हें मारता भी है जो कि आश्रम के विरुद्ध कार्य है। किसी तापस ने उसे कह दिया कि रे उदायन! तुम्हारा पिता तो नगरी में राज्य करता है और तुम्हें कभी याद ही नहीं करता। ऐसा सुनकर वह अपने पिता के पास जाने को अत्यन्त ही व्यग्र हुआ। उसकी माता के बहुत मना करने पर भी वह आज आश्रम से निकल गया। तब तापस विश्वभूति उसे राजी करके लाया। हे राजन्! मैं वही विश्वभूति हूँ एवं यह वही उदयन कुमार है।

विश्वभूति के मुख से इतनी बात सुन कर राजा ने अत्यन्त हर्षित होकर अपने पुत्र उदयन को हृदय से लगा लिया। इतने ही में हाथ में फल लिये हुये, शरीर में दुर्बल, वल्कल वस्त्रधारी मृगावती आती हुई दिखाई दी। राजा ने सोचा कि मैं इसे कैसे अपना मुख दिखाऊँगा। हाय! इसका चिरकाल पर्यन्त वियोग

होने पर भी मैं जीवित रहा ? वह तो गर्भवती थी और अपने बालक का पोषण करने के लिये मेरे विरह में भी जीवित रही। किन्तु मैं उसके सामने लज्जाजनक हूँ। ऐसा विचार कर राजा ने अपने पुरुष को मृगावती के पास क्षमायाचना के लिये भेजा। इतने में वह स्वतः आकर पति से मिली। उस समय सब के हर्ष का पारावार न रहा। मृगावती ने कुमार को राजा के चरणों में नमस्कार करने को कहा, तब उसने पुनः विनयपूर्वक नमस्कार किया।

राजा ने विश्वभूति से प्रार्थना की कि यह सब आपही का उपकार है। मैं कितना वर्णन करूं, आप ही ने मेरे कुल की रक्षा की है। तब उन्होंने ने कहा राजन ! इस सती के पुण्य एवं शील ही के प्रभाव से सब विपत्तियें दूर हुई।

पीछे सब ने मिल कर महर्षि ब्रह्मभूति को नमस्कार किया उनका आशीर्वाद पाकर राजा शतानीक अपनी स्त्री और पुत्र को लेकर नगर की तरफ रवाना हुए।
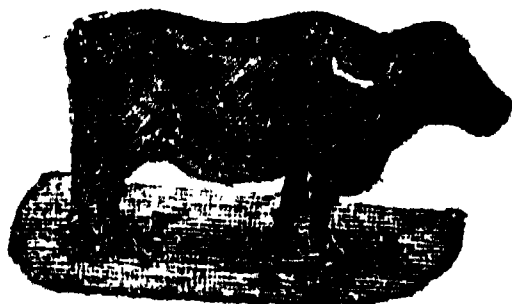
❀ द्वितीय परिच्छेद ❀
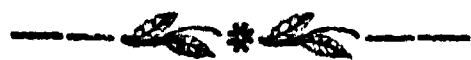
अनोखा–चित्रकार ।

आज कौशाम्बी नगरी ध्वजा पताकाओं द्वारा सजाई गई। घर घर पर तोरण बँधे हुए हैं। गलियों में फूल बिछे हुए हैं। मङ्गल भेरियें बाज रही हैं, सधवा स्त्रियें मङ्गल गीत गा रही हैं। सब के हृदय में आनन्द छा रहा है, क्योंकि महाराज शतानीक अपनी स्त्री और पुत्र उदयन के साथ नगर में आ गये हैं। युगंधर मन्त्री ने राजा को नमस्कार करके कुशल समाचार पूछे, एवं राजा ने भी मन्त्री से प्रजा के कुशल समाचार पूछे, तब मन्त्री ने कहा—"महाराज! आपके प्रताप से यहाँ की सब व्यवस्था ठीक है।"

महारानी मृगावती के आते ही बन्दीवान छोड़ दिये गये एवं महारानी धर्म कार्य में विशेष प्रवृत्त रहने लगीं। निरन्तर साधु, साध्वी और साधर्मियों की भक्ति करने लगीं। एवं राजा भी मृगावती के धर्म कार्य में सहयोग देता हुआ न्याय से प्रजा का पालन करने लगा।

एक दिन महाराज शतानीक मन्त्री, सामन्तों सहित राज सभा में बैठे थे। तब वीणा बजाने की कला में निपुण एक पुरुष ने आकर अपनी कला दिखाने के लिये वीणा बजाना आरम्भ किया। तब उदायन कुमार उसके बजाने में अशुद्धियाँ बतला कर स्वयं वीणा बजाने लगे।

कुमार ने वीणा बजा कर मधुर ध्वनि से राजा एवं सब सभा के लोगों को रंजित कर लिया। तब राजा ने पूछा, "हे वत्स तुमने यह अद्वितीय कला कहाँ से प्राप्त की, तब कुमार ने विनय पूर्वक कहा इस कला प्राप्त होने की उत्पत्ति कहता हूँ सो सुनिये।

एक दिन मैंने अपनी माता के हाथ का कंकण किसी भील को देकर एक सर्प की रक्षा की। तब वह सांप नागकुमार के रूप में प्रकट हुआ और मुझे प्रणाम करके कहने लगा "हे कुमार! मैं नाग लोक में रहने वाला महर्धिक देव हूँ। तुम्हारे दया गुण की परीक्षा करने के लिये यहां आया था। और सांप का रूप धारण करके तुम्हारी परीक्षा ली। तुम्हारे में दया की विशेषता पाकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। हे मित्र! नाग लोक में मेरी नगरी है, मेरे साथ तुम वहां चलकर अपनी चरण रज से मेरी नगरी को पवित्र करो!"

नाग कुमार के विशेष आग्रह से मैं उसके साथ नाग लोक गया। वह नगरी अत्यंत ही रमणीक थी, जहां नाना प्रकार के नाटक हो रहे थे, अप्सराएँ नाटक गायन कर रही थी। वहां मुझे

मेरे मित्र देव ने बहुत सत्कार सन्मान पूर्वक रखा। थोड़े दिन वहां रह कर मैंने उस देव से कहा "हे मित्र! अब मुझे अपनी माता के पास पहुँचादो, वह मेरे वियोग से अत्यंत दुखित होगी"। तब उसने मुझे यह बीणा बजाने की कला देकर तुरत माता के पास पहुँचा दिया। और माता को नमस्कार करके कहा "हे माता! तुम मेरा अपराध क्षमा करना, क्यों कि मैं ने तुम्हें पुत्र वियोग दे कर अगाध दुख दिया है। अब आज से पांच वर्ष बाद तुम्हें अपना पति मिलेगा, तुम किसी बात की चिन्ता मत करना। बहुत समय तुम राज्य सुख भोग कर चरम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी के पास दीक्षा लेवोगी। और चन्दन बाला गुरुणी द्वारा शिक्षा पाकर अपनी आत्म निन्दा पश्चात्ताप करते हुए केवल ज्ञान उत्पन्न होवेगा। माता! मैं तुम्हारा भक्त सेवक हूँ, कभी काम पड़ने पर मुझे याद करना। ऐसा कहकर वह देव अपने स्थान में चला गया।

बीणा बजाने की कला प्राप्त होने की इतनी बात कुमार से सुनकर राजा ने बहुत प्रसन्न होकर कहा कि मैं धन्य हूँ, जिसे ऐसा गुणवान पुत्र प्राप्त हुआ। अन्य दिवस सुबह होते ही मस्तक पर मुकुट और कानों में कुण्डल एवं नाना प्रकार के बहु मूल्य वस्त्राभूषण धारण किये हुए महाराज शतानीक अपनी सभा में मंत्री, मंडलिक राजा, सेनापति और सामन्तों सहित आकर बैठा। अपनी विशाल ऋद्धि देखकर उन्हों ने गर्व में आकर कहा "मेरे देव लोक के सदृश नगरी है। राज्य की सीमा (अठाईस हजार ग्राम) भी बहुत विस्तृत है। हाथी घोड़ा, रथ और प्यादों की सेना भी बहुत है।

मणि रत्नादि से तो कोठे भरे हुए हैं मेरा राज्य अठाइस वकार कर के शोभित है। यत:—

"वापी वप्र विहार वर्ण वनिता वाग्मी वनं वाटिका,
वैद्य ब्राह्मण वादि वेश्म विबुधा वाचंयमा वल्लकी।
विद्या वीर विवेक वित्त विनया वेश्या वणिक् वाहिनी,
वस्त्रं वारण वाजि वे सरवरं राज्यं च वै शोभते" ॥१॥

अर्थात्—जिस राज्य में वापी, वप्र (किला), विहार (चैत्य), वर्ण (चारों वर्ण के लोग), वनिता, वाचाल मनुष्य, वन, बाग, बगीचा, वैद्य, ब्राह्मण, वादी, वेश्म (हवेली), विबुध (देव तथा पंडित), वाचंयम (साधु), वल्ल की (वीणा), विद्या, वीर, विवेक, वित्त, विनय, वेश्या, वणिक, वाहिनी (सेना), वस्त्र, वारण (हाथी), वाजि (अश्व), और वेसर (खच्चर) इतनी वकारादि श्रेष्ठ वस्तुऐं होती हैं, वही शोभा पाता है।

अत: मैं सब से विशेष ऋद्धि वाला हूँ। ऐसा सुनकर अनेक देशों में भ्रमण करने वाले एक दूत ने कहा "महाराज! आपका कहना यथार्थ है, आपके यहां जितनी सामग्री है उतनी अन्यत्र कहीं भी नहीं है, किन्तु हो भी कैसे? क्या सूर्य का तेज खद्योतादि में पाया जाता है? किन्तु जैसे तिलक के बिना स्त्री का मुख शोभा नहीं देता, वैसे ही चित्रों के बिना आपका सभा भवन अच्छा नहीं लगता। मैंने पुष्प शेखर के प्रासाद में किये हुए जैसे चित्र देखे हैं, वैसे किसी भी स्थान में नहीं देखे।"

ऐसा सुन कर राजा ने अच्छे अच्छे चित्रकारों को बुला कर राज-सभा में चित्र करने के लिये आज्ञा दी। और एक निपुण चित्रकार को राज-महल चित्र करने के लिये दिया, वह भी चतुराई के साथ दीवाल पर भांति भांति के चित्र करने लगा। एक दिन उसने महारानी मृगावती के पैर का अंगूठा देख लिया और उसी के अनुसार रानी का सारा रूप चित्रण कर दिया। लेकिन चित्र करते समय जंघा पर एक रंग का छींटा (तिल का चिह्न) पड़ गया। उस चिह्न को मिटाने के लिये उसने बहुत परिश्रम किया। किन्तु ज्यों ज्यों वह उस को मिटाता गया त्यों त्यों वह फिर से रंग का छींटा पड़ने लगा। तब उसने समझ लिया कि उस (मृगावती) की जंघा पर अवश्य तिल का चिह्न होगा।

इतने में राजा चित्रों को देखने के लिये वहाँ आया। उसने रानी का तद्रूप चित्र देख कर चित्रकार पर बहुत प्रसन्नता प्रकट की। एवं अन्यत्र कहीं न जाकर केवल मृगावती का चित्र देखने लगा। देखते देखते राजा को वह तिल का चिह्न नजर आया। उसे देखते ही तो राजा ने विचार किया कि यह चित्रकार बड़ा दुराचारी है। इसने अवश्य मृगावती से संग किया है। अन्यथा उसकी जंघा पर रहे हुये तिल का इसे कैसे मालूम पड़ता।

क्रोध के आवेश में आकर राजा ने चाण्डालों को बुला कर आज्ञा दे दी कि "इस चित्रकार का सिर मूंड कर काला मुख कर के गधे पर चढ़ाओ और सारे नगर में फिरा कर सूली पर लटका दो"।

राजा की आज्ञा के अनुसार चाण्डाल उसे सारे नगर में फिरा कर सूली के पास ले गये। ऐसा देख कर नगर के सब चित्रकार एकत्रित हो कर राजा के पास आये और नमस्कार कर के कहने लगे "स्वामिन्! आप उस बिचारे को निरपराध मरवा कर वृथा क्यों एक रत्न का विनाश करते हैं। यक्ष के दिये हुए वर के अनुसार उसने यह कार्य किया है, वह सर्वथा निर्दोष है।"

ऐसा सुन कर सूली के पास से उस चित्रकार को बुला कर, यक्ष से वर प्राप्त होने के वृत्तान्त पूछा। तब उसने कहा "राजन्! मैं एक दिन अपनी मौसी से मिलने के लिये साकेतपुर गया। उसके एक पुत्र था वह भी चित्रकारी का काम किया करता था। उसी नगर के बाहर कुसुमाकर उद्यान में सुरप्रिय नामक यक्ष का मन्दिर था। उस मन्दिर में प्रतिवर्ष चित्र करवाने पड़ते थे। ऐसा नहीं करने से वह यक्ष नगर में नाना प्रकार के उपद्रव करता। तब राजा ने सब चित्रकारों के नाम से बारी बांध दी। जिस वर्ष में जिस के नाम की बारी होती वही चित्र करता और पीछे उस चित्रकार को यक्ष मार डालता था। उस वर्ष मेरी मौसी के पुत्र को बारी थी, इसलिये वह बहुत उदास बैठी थी। तब मैंने कहा "माता! अब की बार चित्र करने के लिये मैं वहाँ जाऊंगा तुम कुछ चिन्ता न करो।" मेरी मौसी ने कहा "नहीं पुत्र! तुम और वह दोनों मेरे लिये एक सरीखे हो, दोनों आँखों में कौन सी अप्रिय हो सकती है। तुम्हारे जाने से क्या मेरी चिन्ता मिट जायगी।" तब मैंने कहा "साहसिक पुरुषों को किसी प्रकार का

उपद्रव नहीं होता, तुम किसी बात से मत डरो; मैं अवश्य ही जीता हुआ वापिस आऊंगा।"

इस प्रकार मौसी को समझा बुझा कर मैंने तीन उपवास किये और स्नानादि कर के अच्छे वस्त्र पहिने। और चित्र करने की समस्त सामग्री लेकर परमात्मा का स्मरण करते हुए यक्ष के मन्दिर में गया।

मैंने वहाँ जाकर उस यक्ष का अत्यन्त सुन्दर चित्र बनाया, एवं और भी नाना प्रकार के सुन्दर चित्र बनाये और यक्ष की पूजा करके बहु भाव भक्ति के साथ उस यक्ष की स्तुति की। अपनी स्तुति सुन कर उस देव ने प्रकट हो कर कहा "मैं तुम्हारे पर सन्तुष्ट हुआ हूँ, तुम कोई वर मांगो" तब मैंने कहा "आप जो प्रति वर्ष एक आदमी को मारते हैं यह कार्य आप जैसे उच्च कोटि के देवों को शोभा नहीं देता, इसलिये अब से आप किसी भी पुरुष की हिंसा न करें। बस, मैं यही वरदान चाहता हूँ। उस ने यह बात स्वीकार कर के फिर कोई वर मांगने को कहा। तब मैंने उस से प्रार्थना की "मुझे एक ऐसा वर दीजिये कि मैं किसी के शरीर का एक अवयव देख लेने पर भी उसका सारा रूप चित्रित कर दूँ।" ऐसा सुन कर वह देव "तथास्तु" कह कर अन्तर्ध्यान हो गया॥ बस उसी के अनुसार मैंने रानी का सिर्फ एक अंगूठा देख कर उसका सारा रूप चित्रण कर दिया था। यदि आपको प्रतीति न होवे तो कोई परीक्षा कीजिये।

इस प्रकार चित्रकार ने अपनी राम कहानी राजा से कह सुनाई। यद्यपि राजा का क्रोध तो इतने पर भी शान्त न हुआ था तो भी मन्त्री और सभा जनों के विशेष आग्रह से एक वार परीक्षा करना मंजूर किया। तब मन्त्री ने कुब्जा नामक दासी का सारा शरीर वस्त्र से आच्छादित कर के केवल उसका एक अवयव दिखलाया। जिस से उस चित्रकार ने कुब्जा दासी का सारा रूप चित्रित कर दिया। तो भी राजा ने उसका दाहिना हाथ काटने का हुक्म दे दिया। ऐसा अन्याय देख कर मन्त्री ने राजा को बहुत समझाया, किन्तु उन्होंने एक न सुनी। उस चित्रकार का हाथ कटवा कर राजा ने अपने देश से निकाल दिया।

❋ तृतीय परिच्छेद ❋
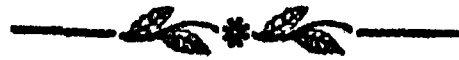
करतूत ।

अब वह चित्रकार क्रोधातुर होकर साकेतपुर गया और तीन उपवास करके उस यक्ष की आराधना की। तब यक्ष ने प्रकट होकर वर दिया कि "तुम बांये हाथ से भी दाहिने हाथ की तरह चित्र कर सकोगे" ऐसा कह कर वह अन्तर्ध्यान हो गया।

उस चित्रकार ने विचार किया कि राजा शतानीक ने मुझे बिना अपराध दुःख दिया है। इसलिये उसके बैर का अवश्य बदला लेना चाहिये। जिस प्रकार नदी के तट पर रहे हुए वृक्ष का उन्मूल होते बिलम्ब नहीं लगता उसी प्रकार राजा शतानीक का नाश कर दूँगा। उसके प्राणों से भी अधिक प्रिय रानी मृगावती है, बस उसी के सुडोल रूप को चित्रित करके परस्त्री-लम्पट महाराज चंड-प्रद्योतन को दिखलाऊँगा, जिससे वह अपने आप ही शतानीक का विनाश कर डालेगा।

ऐसा विचार करके वह चित्रकार उज्जैन नगर गया। वहाँ उसने रानी मृगावती का एक चित्र पट बना कर महाराज चण्ड-प्रद्योतन को दिखाया वह उसे देखते ही मोहित होकर कहने लगा—"यह पूर्णिमा के चन्द्र की भांति मुख वाली, अत्यन्त लावण्यमयी किसी अप्पसरा या विद्याधरी का चित्र है ? हे चित्रकार ! तुम्हें मुंह मांगे दाम दूँगा, सत्य कहो तुमने किस सुन्दरी का रूप देख कर यह चित्र बनाया है ?"

तब उस चित्रकार ने अवसर देख कर कहा—"राजन् ! यह चित्र कोशाम्बी के महाराज शतानीक की रानी मृगावती का रूप देख कर किंचित मात्र चित्रित किया है। उनका यथार्थ रूप तो स्वयं विधाता भी चित्रण करने को असमर्थ है।" ऐसा सुन कर राजा ने सोचा कि जिस प्रकार चम्पक वृक्ष बिना बगीचा शोभा नहीं देता, उसी प्रकार ऐसी रूपवती स्त्री के बिना मेरे अन्त:पुर में कुछ भी नहीं है। जब तक इसे अपनी अर्द्धाङ्गिनी के रूप में न देखूं तब तक मुझे चैन नहीं। ऐसा विचार कर उसने मृगावती के लिये लोह जंघ नामक दूत कौशाम्बीपति शतानीक के पास भेजा।

वह दूत कौशाम्बी नरेश की सभा में आकर उनसे कहने लगा "राजन ! विश्व विजयी, प्रचण्ड शक्तिशाली, अयवन्तीनाथ महाराज चण्डप्रद्योतन ने आपकी रानी मृगावती को अपनी अर्द्धाङ्गिनी बनाने के लिये बुलाया है, क्योंकि पृथ्वी के सभी रत्न पदार्थ उन्हीं सम्राट के योग्य हैं और मृगावती भी नारियों में श्रेष्ठ होने के

कारण उन्हीं के योग्य है, इसलिये शीघ्र ही उन्हें भेज दीजिये; अन्यथा उन्हें चढ़ाई करके यहाँ आते ही देखना। उनकी सेना और ऋद्धि के सामने आप कौनसी गिनती में हैं। यदि जीवितव्य की आशा हो तो एक मिनिट भी विलम्ब न करके शीघ्र मृगावती को भेज दें। नहीं तो वे स्वयं आवेंगे तब आपको पराजय होकर देना पड़ेगा, इस से तो यही ठीक है कि आप चुप चाप उनकी आज्ञा का पालन करें।"

ऐसा सुनकर महाराज शतानीक क्रोधातुर होकर कहने लगे, "रे दूत! उस नरपशु चण्डप्रद्योतन को क्या भूत लग गया है? सो ऐसा कहते हुए शर्म भी न आई, जिस प्रकार हाथी के कुम्भस्थल में स्थित मुक्ताओं को निकाल कर कौआ नहीं धारण कर सकता और पंगु पुरुष मेरु शृङ्ग पर नहीं पहुँच सकता, उसी प्रकार वह मेरी स्त्री को स्वप्न में भी नहीं ले सकता। तेरे स्वामी को यदि कल्याण की इच्छा हो तो इस कुचेष्टा को भूल जाय, नहीं तो परस्त्री लम्पट रावण और पद्मोत्तर की तरह दुर्दशा होवेगी। रे निर्लज्ज दूत! तूने भी उसके कुत्सित विचारों का सन्देशा कहने का दुस्साहस किया है, इसलिये यदि तुम्हें भी जीने की आशा हो तो दुम दबा कर शीघ्र भाग जाओ अन्यथा तुम्हारी मैं भली भांति दुर्दशा करूँगा।"

ऐसा सुनते ही दूत तो वहाँ से चम्पत हुआ। उसने वापिस उज्जैनी आकर महाराज चण्डप्रद्योतन से सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

दूत के वचन सुनकर वह शतानीक पर आग बबूला हो गया, और कौशाम्बी पर चढ़ाई करने के लिये रण-भेरी बजवा कर सेना तैय्यार की।

पाँच लाख घोड़े, दो लाख हाथी, दो लाख रथ और सात करोड़ पैदल सेना के साथ महाराज चण्डप्रद्योतन उज्जैनी से रवाना हुआ। सेना के पैरों की धूलि से सूर्य चन्द्रमा को आच्छादित करता हुआ, पैरों की आवाज़ से शेष नाग को भी कंपाता हुआ और मार्ग के सब देशों के राजाओं द्वारा सन्मान पाता हुआ, महाराज चण्ड-प्रद्योतन कौशाम्बी के निकट आ पहुँचा।

शत्रु की सेना को नगरी के पास आते हुए देख कर उदायन कुमार ने नगरी के सब दरवाजे बन्द करवा दिये। और खूब साव-धानता से रहने लगा। प्रवल शत्रु चण्डप्रद्योतन ने आकर चारों ओर से नगरी को घेर लिया।

इधर महाराज शतानीक को अतिसार रोग उत्पन्न हो गया, जो कि दिनों दिन असाध्य होता जाता था। वे अपने कृत्यों का पश्चात्ताप करने लगे कि "मैंने व्यर्थ ही उस चित्रकार का हाथ कटवाया, जिसका आज यह परिणाम हुआ कि सभों के चित्त में अशान्ति ही अशान्ति देखने में आती है।"

सती मृगावती भी ऐसा देख कर अपने रूप की निन्दा करने लगी "हाय! यह अनर्थ का मूल सौन्दर्य मुझे क्यों मिला! जिससे

मेरे लिये लाखों प्राणियों की हिंसा होवेगी, अहो ! मुझे धिक्कार है और संसार में कुरूपा स्त्रियें धन्य हैं, जो कि सुख से अपना शील पालन कर सकती हैं।

अपने पति की मरणान्त व्याधि देख कर मृगावती उनके पास आकर कहने लगी "हे नाथ ! यह संसार दुखों का मूल है, आप आर्त रौद्र ध्यान को छोड़ कर मन को वश में रखिये। मेरा शील खण्डन और नगरी पर अधिकार कोई नहीं कर सकता। चण्ड-प्रद्योतन तो बाहर पड़ा है, उसकी आप कुछ भी चिन्ता न करें, नगरी की रक्षा कुमार अच्छी तरह से कर रहा है। आप निरन्तर परमात्मा श्री अरिहन्त प्रभु का ध्यान हृदय में धारण किये हुए रहें, परभव सुकृत्य रूपी संबल ही साथ चलेगा। हे स्वामिन् ! अनादि काल से संसार में परिभ्रमण करते हुए जीव को मनुष्य भव प्राप्त करना बहुत ही कठिन है। यदि पा भी लिया तो धर्म सामग्री मिलना तो अत्यन्त ही दुर्लभ है। इस लिये मानव जीवन की शेष घड़ियें धर्म ध्यान में ही बितावें। सब प्राणी मात्र से राग द्वेष दूर करके चौरासी लक्ष जीवायोनि से क्षमा याचना करलें। और अपने हृदय में शुभ भावनाओं का समावेश करें। आप को अरिहन्त, सिद्ध, सुसाधु और केवली प्ररुपित धर्म का शरणा होवे। इस अढाई द्वीप में आभरण के समान विहरमान (विचरते हुए) अरिहन्त तीर्थंकरों को नमस्कार करके भव २ में कल्याणकारी और मोक्ष को देने वाले उपरोक्त चारों शरणों को हृदय में धारण करें।

इस प्रकार मृगावती द्वारा शुभ भावनाओं की देशना से धर्म आराधना कर के महाराज शतानीक का देहान्त हो गया। उनका अग्नि संस्कार हो जाने के बाद तत्त्वों को जानने वाली मृगावती ने मन में किसी भी प्रकार का शोक न लाकर निर्मल शील का पालन करने लगी।

अब प्रजा के दुख को दूर करने के लिये मृगावती ने एक दूती को बुलाया और उसे भली भांति समझा बुझा कर महाराज चण्ड प्रद्योतन के पास भेजा। उसने जाकर कहा "राजन्! मृगावती ने मेरे साथ जो आपके प्रति संदेश भेजा है वह सुनिये—अब मेरा पति तो मर गया है, मैं आप ही के आधीन हूँ, आपके साथ युद्ध करने को कौन समर्थ है? किन्तु अभी तक उदायन कुमार बालक है उसके लिये आप मेरे कहे मूजब व्यवस्था कर दें तो मैं आपकी आज्ञा पालन करने को तैयार हूँ। मेरी यही इच्छा है कि आप कुमार के लिये एक अच्छा गढ़ बनवा कर खूब सेना सामग्री दे दें, जिस से यह शत्रुओं द्वारा अपना बचाव कर सके; क्योंकि आपका नगर तो बहुत दूर है शत्रुओं का उपद्रव होने पर आप शीघ्र कौशाम्बी नहीं आ सकेंगे।

इस प्रकार दूती के वचन सुन कर बिना युद्ध किये ही अपना कार्य सफल होते देख कर चण्ड प्रद्योतन ने एक खूब संगीन गढ़ बनवाना प्रारम्भ कर दिया। थोड़े ही दिनों में क़िला तैयार हो जाने पर राजा ने सब प्रकार की सामग्री उज्जैन से मंगवा कर धनधान्य

से भर दिया और सेना भी बहुत सी दे दी। और एक दूती को बुला कर मृगावती के पास भेजी।

उस दूती ने आकर कहा "स्वामिनी ! महाराज चण्ड प्रद्योतन ने आपकी अभिलाषा पूर्ण कर दी, अब आप भी उनकी इच्छा पूरी कीजिये।" तब मृगावती ने कहा "सुनो ! यदि तुम्हारे राजा की अभी तक पाप कर्म में प्रवृत्ति है तो वह क्या राज्य कर सकेगा ? ऐसा करने से लोक में निन्दा होवेगी, क्योंकि पराई कन्या तो सर्वत्र मांगने की नीति है किन्तु परस्त्री की याचना कभी नहीं की जा सकती। मैंने तो काल विलम्ब के लिये ही यह कार्य किया था। कभी सूर्य पश्चिम में भी उदय हो जाय तो भी मृगावती अपना शील खण्डन नहीं कर सकती।

दूती ने सब वृत्तान्त जाकर चण्ड प्रद्योतन से कहा। वह सुनते ही पश्चात्ताप करने लगा "हाय ! मैंने बिना सोचे विचारे ही कार्य कर डाला, अब क्या किया जाय। सेना उनको बहुत सी दे दी और गढ़ भी नया करवा दिया है जिससे मैं उसका बाल भी बांका नहीं कर सकता।

राजा को ऐसा पश्चात्ताप करते हुए देख कर मन्त्री ने कहा "राजन् ! अन्याय से कभी कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती। अब पश्चात्ताप करने से क्या हाथ आवेगा ? इस प्रकार मन्त्री के समझाने बुझाने से राजा चण्ड प्रद्योतन चुप चाप बैठ गया। नहीं तो कर ही क्या सकता था ?

सती मृगावती ने बहुत उत्सव आडम्बर के साथ उदायनकुमार का राज्याभिषेक कर दिया। अब वह नीति से प्रजा का पालन करने लगा।

उदायन को राज कार्य में निपुण देख कर मृगावती ने विचार किया कि अब यहाँ भगवान् श्री वर्द्धमान स्वामी पधारें तो मैं उनके पास चारित्र ग्रहण करके अपना आत्म-कल्याण करूँ।
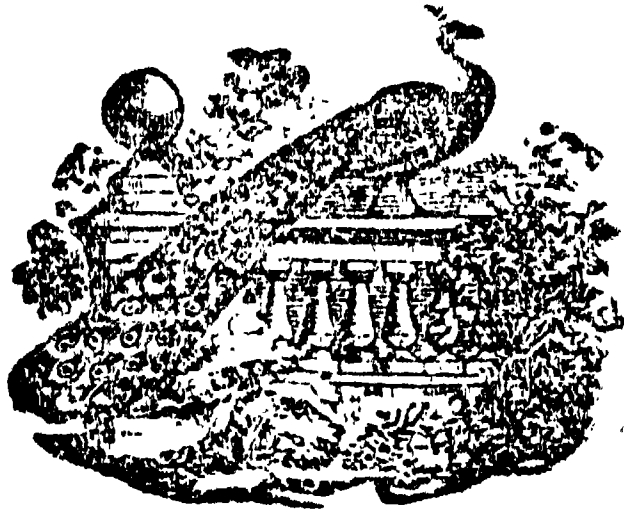
❋ चतुर्थ परिच्छेद ❋

केवल ज्ञान और निर्वाण ।

स समय परमात्मा श्री महावीर स्वामी केवली अरिहन्त अवस्था में विचर कर भव्य जीवों को प्रतिबोध देते हुए कौशाम्बी के उद्यान में पधारे। तब वायु कुमार देवों ने एक योजन (८ मील) भूमि साफ़ की। मेघकुमार देवों ने उस स्थान पर सुगन्धित जल की वृष्टि की। इस प्रकार सब देवों ने भक्तिपूर्वक अपना अपना कार्य सम्पादन कर के रजत, हेम, मणिरत्नमय, तीन गढ़ और बारह परषदा वाले समवसरण की रचना की। करोड़ों प्राणी उसी समवसरण में आकर शान्ति के साथ बैठ गये। राजा चण्ड प्रद्योतन भी नगर के बाहर घेरी हुई सेना को दूर करके प्रभु के समवसरण में आया।

प्रभु के आगमन का शुभ समाचार सुन कर महारानी मृगावती के हृदय में हर्ष का पारावार न रहा। वह भी अपने पुत्रादि परिवार के साथ भगवान् की देशना सुनने के लिये आई, और प्रभु को तीन प्रदक्षिणा देकर वन्दना कर के बैठ गई।

"इतने ही में एक भील* पल्लीपति ने आकर प्रभु को वन्दना कर के पूछा "या सा" तब उत्तर में प्रभु ने कहा "सा सा" इतना

---

* वसन्तपुर नगर में अनंगसेन नामक एक स्वर्णकार रहता था। वह अत्यन्त विषयी था, उसने एक एक से अधिक रूपवती पांचसौ स्त्रियों से विवाह किया, किन्तु वह हर दम उन्हें घर ही में रखता था कभी भी बाहर न जाने देता था। एक दिन वह किसी स्वजन सम्बन्धी के यहाँ का निमन्त्रण होने के कारण भोजन करने के लिये गया। तब पीछे से उसकी स्त्रियों ने विचार किया कि आज हमें अवसर मिला है, स्वतन्त्रतापूर्वक परस्पर क्रीड़ा करें। ऐसा विचार कर के सभों ने स्नान विलेपन आदि कर के वस्त्र, आभरणों से अपने शरीर को सुसज्जित किया। और हाथ में दर्पण लेकर अपना अपना रूप निरीक्षण करती हुई परस्पर कहने लगी कि अपना स्वामी जिस दिन जिस की बारी होती है उसे ही आभूषणादि से सुशोभित करता है, बाकी स्त्रियों को शृङ्गार भी नहीं करने देता, अतः आज स्वेच्छापूर्वक क्रीड़ा करनी चाहिये।

इतने ही में उनका स्वामी वापिस आ गया उसको अपनी स्त्रियों की ऐसी स्वच्छन्दता देख कर बहुत क्रोध आया और एक स्त्री को पकड़ कर उस के मर्मस्थान में प्रहार किया जिस से वह तत्काल मर गई।

तब बाकी स्त्रियों ने सोचा कि जैसे इसने एक को मारा वैसे ही सभों को मार डालेगा इससे तो यही ठीक है कि इसी को मार

सुनते ही वह वैराग्य प्राप्त हो कर देशना सुनने के लिये बैठ गया। तब गणधर श्री गौतम स्वामी ने प्रभु से निवेदन किया "हे भग-वन्! इसने आपको क्या पूछा? और आपने क्या उत्तर दिया?

डालें। ऐसा विचार कर सभी स्त्रियों ने अपने अपने हाथ में रहे हुए दर्पणों को उसके सामने फेंका। जिनके प्रहार से उस स्वर्ण-कार का भी देहान्त हो गया। तब लोकोपवाद के भय से वे सभी स्त्रियें जल कर मर गईं। उनके जीव किसी अटवी में चोर हुए। और जो स्त्री पहिले मरी थी उसका जीव किसी ग्राम में व्यापारी के यहाँ पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। और स्वर्णकार का जीव उसी सेठ के घर में पुत्री के रूप में पैदा हुआ। उस पुत्री का जन्म होते ही पूर्व भव के संस्कार से अत्यन्त कामातुर होकर रुदन करने लगी। एक दिन उसके भाई का हाथ उसकी योनि पर लगा, जिस से वह रोती बन्द हो गई। इस प्रकार यह गुप्त उपाय हाथ लगने से जब वह रोती तभी उसका भाई उपरोक्त उपाय से बन्द कर देता। एक दिन उसके पिता ने उसे इस प्रकार करते देखकर मना किया किन्तु तो भी वह नहीं माना, तब उसे घर से बाहर निकाल दिया। वह चोरों की पल्ली में जाकर पूर्व भव के योग से उन चारसौ निन्याणवें (४९९) चोरों का स्वामी हो गया। एक दिन उन्होंने इकट्ठे होकर किसी गाँव को लूटा, और वहाँ से दूसरे गाँव आये। तब वह कन्या जो कि युवावस्था को प्राप्त हो गई थी उसने पूर्व भव के स्नेह के कारण उन चोरों को अपनी पत्नी बनाने की

कृपया इस का परमार्थ सब के समझने के लिये प्रकट कीजिये। तब प्रभु ने कहा यह भील बहुत पापी है। इसने अपनी भगिनी के

प्रार्थना की। तब वे उसे अपनी पल्ली में ले आये। किन्तु उसकी कामवासना पाँच सौ पुरुषों से भी तृप्त न हुई। अहो, स्त्रियों की काम लोलुपता भी कैसी है। कहा भी है कि—

नाग्निस्तृप्यति काष्ठौघे, निम्नगाभिर्महोदधिः।
नांतकः सर्व भूतेभ्यो, न पुंभिर्वाम लोचना ॥१॥

अर्थात्—काष्ट के समूह से अग्नि तृप्त नहीं होती, अनेक नदियों के जल से भी समुद्र तृप्त नहीं होता। सर्व प्राणियों का घात करने पर भी यमराज तृप्त नहीं होता, और पुरुषों से स्त्री तृप्त नहीं होती।

एक दिन उन चोरों ने विचार किया कि यह एक स्त्री पाँचसौ पुरुषों द्वारा सेवन किये जाने से वहुत दुःख पाती होगी इसलिये फिर एक दूसरी लाना चाहिये। इस प्रकार करुणा दृष्टि से वे फिर एक स्त्री ले आये। उसे देखकर पहिले वाली स्त्री ने सोचा "अरे! ये मेरे पर दूसरी स्त्री लाये हैं, यह मेरे सुख में हिस्सा बँटावेगी।" ऐसा विचार कर उसे कुंए में डाल कर मार दिया। यह बात पल्ली-पति ने सुन कर विचार किया कि यह महा पाप कारिणी और कामवासना में अत्यन्त विह्वल है। ऐसी तीव्र काम राग वाली शायद मेरी बहिन तो न हो? क्यों कि उसके अत्यन्त काम बुद्धि थी। इस प्रकार सन्देह उत्पन्न हो जाने से समाधान करने के लिये भगवान् महावीर स्वामी के समवसरण में आया।

साथ व्यभिचार सेवन किया है और संशय उत्पन्न हो जाने से यहाँ आकर मुझ से मन ही से प्रश्न पूछा क्योंकि लज्जाजनक बात प्रकट से नहीं कही जा सकती।

ऐसा कह कर प्रभु ने समस्त भाषाओं का स्पर्श करने वाली पैंतीस अतिशय युक्त वाणी से देशना—उपदेश देना प्रारम्भ किया "अहो भव्यजीवो ! संसार में विषय सबसे बुरी चीज है, इसके परिणाम किम्पाक के फल के सदृश बुरे होते हैं। इससे तो विष ही अच्छा, विष खा लेने से तो एक बार मरना पड़ता है किन्तु विषय सेवन करने से भव २ में जन्म मरण करना पड़ता है। जो प्राणी विषयादि से विरक्त रहता है, उसका यश लोक में बहुत फैलता है। आधि, व्याधि, जरा और मरण से व्याकुल इस संसार सागर में परिभ्रमण करते हुए जीव को द्वीप के समान नर भव पाना बड़ा ही दुर्लभ है। यदि वह पा भी लिया तो सद्‌गुरु का संयोग मिलना और विषयादि से निवृत्त होना अत्यन्त दुष्कर है। मानव जन्म को पाकर सफल करने के लिये चारित्र रत्न की विशेष आवश्यकता है। यह चारित्र दो प्रकार का है एक देश विरति और दूसरा सर्व विरति, जिसमें देश विरति की अपेक्षा सर्व विरति चारित्र शीघ्र मोक्ष दायक है। इसलिये शीघ्र ही इस भव रूपी समुद्र से पार उतरने के लिये संयम रूपी नौका का आश्रय ग्रहण करना चाहिये। वह संयम नौका अतिचार रूपी छिद्रों से रहित होने से भव्यात्माएँ शीघ्र ही अपने इष्ट स्थान को पहुँच जाती हैं। वह इष्ट स्थान इस भव समुद्र से पार शिवपुर

नगर है वहाँ चले जाने से जीव अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन और अनन्त चारित्र मयी प्रकट आत्म गुणों में विलीन हो जाता है फिर यहाँ वापिस नहीं आता। इसलिये हे भव्यात्माओ! तुम लोक इसी संयम का सेवन करो जिससे तुम्हें शीघ्र ही सिद्ध पद प्राप्त हो।"

प्रभु के मुंह से ऐसी धर्म देशना सुन कर उस भील पल्लीपति ने संयम अंगीकार कर लिया। और सती मृगावती ने कहा—"प्रभो! आप मुझे संयम रूपी नौका देकर इस संसार के संकट से रक्षा कीजिये? मैं राजा चण्डप्रद्योतन की अनुमति लेकर संयम ग्रहण करूँगी।"

तब चरम जिनेश्वर ने कहा "तुम शुद्ध चारित्र का पालन करके भव-समुद्र से पार हो जावोगी, इसलिये शुभ कार्य में किसी प्रकार का प्रतिबन्ध मत करो।"

मृगावती ने उसी वक्त चण्ड प्रद्योतन के पास जाकर कहा—"राजन्! जिस प्रकार कौवा जल से भरे हुए सरोवर को छोड़ कर घड़े का नाश करता है, उसी प्रकार अधम पुरुष परस्त्री की इच्छा करते हैं। किन्तु जो लोग परस्त्री और विषय से विरक्त हैं वे जगत् में धन्य हैं। इस प्रकार वीर के वचन सुनकर तुम मुझे दीक्षा लेने के लिये आज्ञा दो।"

तब लज्जावश चण्डप्रद्योतन ने सती को दीक्षा लेने की अनुमति दे दी। तब मृगावती नगर में गई और बहुत उत्सव आडंबर के साथ याचकों को दान देती हुई वीर प्रभु के पास आकर दीक्षा

ले ली। मृगावती की दीक्षा देख कर चण्डप्रद्योतन की अंगारवती प्रमुख आठों राणियों ने भी वैराग्य में आकर दीक्षा ले ली।

और भील मुनीश्वर ने महा पाप कार्य के करने वाले एक कम पाँच सौ (४९९) चोरों को प्रतिबोध दिया। लेकिन उन पाँच सौ की स्त्री तो विषय से विरक्त न हुईं, उसे चिरकाल संसार में भ्रमण करना था।

अब प्रभु ने साध्वी मृगावती को हितशिक्षा देनी आरम्भ की। "तुमने देवों को भी दुर्लभ, संयम रत्न को प्राप्त किया है अब इसको निरतिचार पालन करना तुम अवश्य मोक्ष जाओगी। निगोद में भ्रमण कराने वाले पाँच प्रकार के प्रमादों का कभी आचरण न करना। गुरु और गुरुणी की आज्ञा में रह कर संसार में दीपक के सदृश ज्ञान का अध्ययन करना! पाँच महाव्रतों को शुद्ध रूप से पालन करते हुए आहार के ४२ दोषों को टालना" इत्यादि प्रभु ने मृगावती आदि नवदीक्षित साध्वियों को साधु का आचरण व्यवहार बतला कर चन्दनबाला गुरुणी को सौंप दी।

अब भगवान तो साधु साध्वियों के परिवार सहित कहीं अन्यत्र विहार कर गये। चण्ड प्रद्योतन भी उज्जैन चला गया। महाराज उदायन नीति से कौशाम्बी का राज्य पालन करते। किन्तु उनके चित्त में अपनी माता मृगावती के दर्शन करने की उत्कट इच्छा थी।

भव्य जीवों का उपकार करते हुए उग्र विहारी श्री वर्द्धमान स्वामी कौशाम्बी के उद्यान में आकर समोसरे। वनपाल ने आकर

महाराज उदायन को बधाई दी। उन्होंने यह शुभ समाचार सुनते ही उसको बहुतसा इनाम दिया।

महाराज उदायन अपने अन्तेवर परिवार सहित प्रभु को वंदना करने के लिये आये। उन्होंने मुकुट, चामर, छत्र आदि राजकीय चिन्हों को दूर करके प्रभु को तीन प्रदक्षिणा दीं और वन्दना करके परषदा में बैठ गये। तब प्रभु ने देशना देनी प्रारम्भ की "हे राजन! इस असार संसार में कोई किसी का सम्बन्धी नहीं है। अनादि काल से भ्रमण करते हुए इस आत्मा ने किसी भी संसारी जीव से माता, पिता, पुत्र, कलत्र प्रभृति सम्बन्ध नहीं छोड़ा है। किन्तु इस भव में सुख और पर भव में सद्गति की इच्छा रखने वाले प्राणियों को सर्व प्रथम सम्यक्त्व व्रत धारण करना चाहिये। अठारह दोषों से रहित श्री अरिहन्त देव, गुरु, शुद्ध साधु और धर्म श्री केवली प्ररुपित पर श्रद्धा रखने वालों को इस संसार में परिभ्रमण नहीं करना पड़ता है।" इस प्रकार प्रभु का उपदेश सुनकर राजा उदायन ने सम्यक्त्व मूल श्रावक के बारह व्रत धारण कर लिये।

उस समय सूर्य और चन्द्रमा अपने मूल विमानों पर आरूढ़ हुए प्रभु को वन्दना करने के लिये आये। संध्या का समय हो जाने के कारण चन्दनबाला तो साध्वियों के साथ उठ कर अपने स्थान में आई और प्रतिक्रमणादि धर्म कार्य करने लगी। पर सूर्य चन्द्रमा के मूल विमान होने से समय का कुछ ज्ञान न होने के कारण सती मृगावती वहीं बैठी रही। इसके बाद जब सूर्य और चन्द्रमा अपने

स्थान को चले गये, तब मृगागती भी चारों ओर अँधेरा (रात्रि का समय) देख कर मन में पश्चात्ताप करती हुई झटपट उठ कर प्रभु को वन्दना करके उपाश्रय में चली आई। तब चन्दनबाला ने उसे हित शिक्षा देते हुए कहा—"महानुभावे ! तुम कुलीन हो, तुम्हें रात्रि में बाहर नहीं रहना चाहिये। क्योंकि साध्वी का यह आचार नहीं है। यद्यपि तुम शीलव्रती हो तो भी साधु के आचार मर्यादा से विरुद्ध कार्य नहीं करना चाहिये, ऐसा करने से लोक में संयम धर्म की अवहेलना होती है। मैंने तो समझा सन्ध्या समय हो जाने के कारण तुम यहाँ आगई होंगी इससे मैं अन्य साध्वियों को साथ लेकर यहाँ चली आई।"

इस प्रकार उसे शिक्षा देकर चन्दनबाला तो धर्म जागरण करने लगी (सो गई) और मृगावती उसका पैर दाबती हुई आत्म-निन्दा पश्चात्ताप करने लगी "प्रभु ने निरतिचार संयम को मोक्ष का मार्ग कहा है, किन्तु आज मैंने यह अतिचार लगा कर बहुत ही बुरा किया है, प्रभु आज्ञा उल्लंघन करने वाले प्राणी को अनन्त संसार परिभ्रमण करना पड़ता है। अब से मैं कभी ऐसा कार्य नहीं करूँगी।" इस प्रकार दुष्कृत्यों को मिथ्या करते हुए, अपनी आत्म निन्दा करते हुए सती को लोकालोक का ज्ञान कराने वाला, सर्व श्रेष्ठ निर्मल केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। इस ज्ञान के उदय हो जाने से मृगावती १४ राज लोक के पदार्थों को हाथ में रहे हुए मोती की तरह साक्षात् देखने लगी।

उसी समय अन्धकार में चलते हुए एक काले साँप को अपनी ज्ञान दृष्टि से देख कर सोयी हुई अपनी गुरुणी चन्दनबाला का हाथ उठा कर एक ओर कर दिया। जिससे वह चुपचाप रेंगता हुआ कहीं अन्यत्र चला गया। हाथ दूर रखने से चन्दनबाला की नींद टूट गयी और मृगावती को कहने लगी, "भद्रे! तुम अभी तक सोई नहीं, मुझे दाब रही हो। मुझे निद्रा आ जाने के कारण तुम्हें सोने के लिये न कह सकी। लेकिन तुमने मेरे हाथ को हटा कर अन्यत्र रख दिया इसका क्या कारण?" तब मृगावती ने कहा आपके आसन के पास से एक काला साँप जा रहा था, इसी लिये मैंने आपका हाथ हटा कर एक ओर रख दिया था।

ऐसा सुन कर चन्दनबाला ने विस्मित होकर पूछा, "हे भद्रे! इस अँधेरी रात में हाथ को हाथ नहीं सूझता, तो भी तुमने उस काले साँप को कैसे देख लिया?" तब मृगावती ने कहा, "मैंने उसे ज्ञान दृष्टि से देखा" ऐसा सुनकर चन्दनबाला ने आनन्द मिश्रित आश्चर्य से पूछा "वह ज्ञान प्रतिपाती है वा अप्रतिपाती" मृगावती ने कहा "अप्रतिपाती" तब चन्दनबाला ने कहा, "तो क्या तुम्हें केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया?" मृगावती ने कहा "आपकी कृपा से!"

सती को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ सुनते ही चन्दनबाला संथारे पर से उठ बैठी और अपनी आत्म निन्दा करने लगी, "मैंने व्यर्थ ही इस सती को उपालम्भ दिये किन्तु इसे धन्य है जो कि मेरे कहे हुए पर क्रोध न ला कर उच्च भावना भाते हुए केवल ज्ञान

उत्पन्न किया। हाय ! मैंने केवल ज्ञान की विराधना करके भारी पाप किया है।"

इस प्रकार शुक्ल ध्यान को ध्याते हुए क्षपक श्रेणी गुण-स्थान आरोहण करके साध्वी चन्दनबाला ने तत्काल केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया। अब वे दोनों साध्वियाँ केवल ज्ञान रूपी अपूर्व आनन्द अनुभव करने लगीं।

जो केवल ज्ञान लाखों वर्षों तक तपश्चर्या करने और संयम पालने पर भी दुर्लभ था। धन्य है उन महासतियों को, जिन्होंने क्षण भर में उच्च भावनाओं की श्रेणी पर चढ़ कर प्राप्त कर लिया।

अनुक्रम से महावीर स्वामी वहाँ से विहार कर गये। सती चन्दनबाला और मृगावती भी प्रभु के साथ विहार करती हुई अपने बाकी चारों कर्मों का क्षय करके चिरकाल संसार में यश स्थापित करके अक्षय अव्याबाध सुखों के स्थान मोक्ष मन्दिर को प्राप्त हुईं।

राजा उदायन भी उत्तरोत्तर धर्म कार्य में विशेष भाग लेने लगे। उन्होंने बहुत द्रव्य व्यय करके कौशाम्बी में कञ्चन का मणिरत्न मय जिन मन्दिर बनवाया जिसमें जीवित (महावीर) स्वामी की प्रतिमा स्थापन की। प्रमाद को त्याग कर महाराज प्रति दिन वहाँ पूजन किया करते थे। दीन जनोद्धार, नगर अमारी घोषणा आदि करके शुद्ध श्रावक धर्म पालन करते हुए नीति से राज्य करने लगे।

इसी सती के चरित्र से पाठक और पाठिकाओं को भलीभांति ज्ञात हो गया होगा कि वह अपने शील की रक्षा के लिये कितनी दृढ़ थी। पति के मरणान्त व्याधि हो जाने पर भी किस प्रकार धैर्य धारण करके धर्म आराधना करवाई थी। पति का देहान्त हो जाने पर भी शोक न लाकर किस प्रकार चण्ड प्रद्योतन की कुवासनाओं के पंजे से निवृत्त होकर दीक्षा ली और गुरुणी के शिक्षा रूपी उपालम्भों को सुनकर मन में लेश मात्र भी क्षोभ न लाकर आत्म निन्दा करते हुए केवलज्ञान प्राप्त किया था। गुणानुरागी सज्जनो! मुझे आशा है कि इस छोटी सी पुस्तक को पढ़ कर यदि आप समुचित गुण ग्रहण करेंगे, तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

हमारी तरफ से प्रकाशित पुस्तकें—

१—अभय रत्नसार ।

इसमें पाँचों प्रतिक्रमण के अतिरिक्त चैत्यवन्दन, स्तुति, स्तोत्र, स्तवन, सज्झाय, रास, पूजाएं, तपस्यादि सब तरह की विधियें, सूतक विचार, भक्ष्याभक्ष्य विचार आदि नित्य कर्म में आने वाली आवश्यक सभी चीज़ों का संग्रह किया गया है। प्रत्येक श्रावक श्राविकाओं के पास रखने योग्य अपूर्व ग्रन्थ है। अच्छे कागज पृ० ८०० और पक्की जिल्द होते हुए भी प्रचार के लिये कीमत मात्र ॥।) रखी है। पुस्तकें सिलक में कम हैं मँगवाने वाले महाशय शीघ्रता करें।

२—पूजा संग्रह ।

इस पुस्तक में प्राचीन विद्वान कवियों की बनाई हुई १६–१७ पूजाएं, दादा साहब की बड़ी पूजा, पाठक श्री समयसुन्दर जी गणि कृत चौबीसी, एवं अनेक अच्छे २ स्तवनों का संग्रह है। तो भी हमने प्रचार की दृष्टि से सजिल्द का दाम केवल १) रखा है।

३—सती मृगावती ।

यह तो पाठकों के सामने उपस्थित ही है। कीमत ≈) दो आना।

नोट—सती मृगावती की वी. पी. ८ पुस्तकों से कम न भेजी जायगी।

पुस्तक मिलने का पता—

शंकरदान सभयराज नाहटा,

५–६ आरमेनियन स्ट्रीट, कलकत्ता ।

Calcutta.